International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030
Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 3; Issue 1; January 2018; Page No. 666-668

प्रेमचंद के साहित्य में माता व विमाता के रूप में नारी

देवराज
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, हरियाणा, भारत।

प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति में माता का स्थान सर्वोच्च माना जाता है। माँ त्याग का ही दूसरा रूप है। माँ अपनी संतान के लिए सर्वस्व बलिदान कर देती है। प्रेमचंद माता के रूप को ही नारी का आदर्श रूप मानते हैं। नारी का एक दूसरा रूप विमाता का भी है। विमाता के रूप को प्रेमचंद जी अच्छा नहीं मानते। प्रेमचंद जी का साहित्य में विमाता का अंकन करके उनके द्वारा भोगा गया यथार्थ ही है। उन्होनें माता व विमाता को एक–दूसरे के विरोधी के रूप में अंकित किया है। माता को श्रेष्ठ मानते हुए वे कहते है, "नारी केवल माता है और इसके उपरांत वह जो कुछ है वह सब मातृत्व का उपक्रम मात्र है। मातृत्व संसार की सबसे बड़ी साधना, सबसे बड़ी तपस्या, सबसे बड़ा त्याग और सबसे महान् विषय है।"[1] विमाता की प्रताड़ना प्रेमचंद जी ने स्वयं अपने जीवन में भोगी है। अतः वे कहते है, "ईश्वर न करे, लड़कों को सौतेली माँ से पाला पड़े। जिसे अपना बना–बनाया घर उजाड़ना हो, अपने प्यारे बच्चों की गर्दन पर छुरी फेरवानी हो, वह बच्चों के रहते अपना दूसरा ब्याह करे। ऐसी देवी ने जन्म ही नहीं लिया, जिसनें सौत के बच्चे को अपना समझा हो।"[2]

प्रेमचंद जी ने अपने साहित्य में माता का विशेष आदर के साथ वर्णन किया है। उन्होंने माता में प्रेम, त्याग, ममता आदि भावों का मार्मिक चित्रण किया है। उन्होंने नारी को पुरुषों से श्रेष्ठ माना है। वे कहते हैं, "पुरुष में थोड़ी पशुता भी होती है जिसे वह इरादा करने पर भी हटा नहीं सकता। यह पशुता उसे पुरुष बनाती है। विकास के क्रम में वह स्त्री से पीछे है। वात्सल्य, स्नेह, कोमलता, दया इन्हीं आधारों पर सृष्टि टिकी हुई है और ये स्त्रियों के गुण है।"[3] ' माँ' कहानी में आदित्य की पत्नी पुत्र को जन्म देती है। वह अपने जीवन की विषम परिस्थितियों में कष्टपूर्ण जीवन जीते हुए अपने पुत्र का पालन–पोषण करती है। वह आदित्य से कहती है, "तुम्हारा जीवन देवताओं का–सा था। निःस्वार्थ, निर्लिप्त और आदर्श। अगर तुम माया–मोह में फँसे होते, कदाचित मेरे मन को अधिक संतोष होता, लेकिन मेरी आत्मा को गर्व और उल्लास न होता जो इस समय हो रहा है। मैं अगर किसी को बड़े से बड़ा आशीर्वाद दे सकती हूँ तो वह यही होगा कि उसका जीवन तुम्हारे जैसा हो।"[4]

प्रेमचंद जी नारी को त्याग व प्रेम की मूर्ति मानते हैं। वे इन्हीं मानवीय व ममतामयी गुणों के कारण नारी को पुरुष से श्रेष्ठ समझते हैं। उनके 'गोदान' उपन्यास में प्रेमचंद जी मेहता के मुख से जैसे स्वयं ही वक्तव्य दे रहे हैं, "मैं प्राणियों के विकास में स्त्री के पद को पुरुषों के पद से श्रेष्ठ समझता हूँ, उसी तरह जैसे प्रेम, त्याग और श्रद्धा को हिंसा, संग्राम और कलह से श्रेष्ठ समझता हूँ।"[5] नारी की श्रेष्ठतम उपलब्धि प्रेमचंद जी मातृत्व को ही मानते हैं। मातृत्व से ही नारी के जीवन की सार्थकता है। मातृत्व से ही नारी के जीवन की प्रयोजनशीलता सिद्ध होती है। नारी ही सृष्टि को आगे बढाती है। मातृत्व के बिना हम सृष्टि की कल्पना भी नहीं कर सकते। मातृत्व ही नारी की साधना व तपस्या है। मातृत्व से ही हम सब है। "नारी के चरित्र में अवस्था के साथ मातृत्व का भाव दृढ़ होता जाता है। यहाँ तक कि एक समय ऐसा आता है जब नारी की दृष्टि में युवकमात्र पुत्रतुल्य हो जाते हैं, किन्तु पुरुषों में यह अवस्था कभी नहीं आती। उनकी कर्मेंद्रियाँ क्रियाहीन भले हो जाएँ पर विषय–वासना संभवतः और भी बलवती हो जाती है।"[6] अपने रक्त से पोषित संतान के पालन–पोषण में अपना सर्वस्व समर्पित कर देने वाली और विपरीत परिस्थितियों में कभी हार न मानने वाली माताएँ ही आदर्श माताएँ होती हैं। ममत्व का पर्याय माँ ही होती है। माँ की ममता किसी अन्य से प्राप्त हो ही नहीं सकती। वात्सल्य का अक्षय स्त्रोत सदैव बहता ही रहता है चाहे माँ किसी भी अवस्था में ही। अपनी संतान के लिए माता बड़े से बड़ा कष्ट सहन कर सकती है। 'आगा–पीछा, कहानी की कोकिला, 'शांति' कहानी की गोपा और 'शूद्रा' कहानी की गंगा इसी प्रकार की माताएँ है। 'त्यागी का प्रेम' कहानी की आनंदी बाई अपने दुर्बल शिशु को घोर निर्धनता व विषम परिस्थितियों में भी पूरी तल्लीनता से पालती है। पुत्री के पालन–पोषण में पुत्र से भी अधिक सावधानी रखती है। पुत्री को सर्वगुण–संपन्न बनाकर योग्य वर से उसका विवाह करना ही उसका लक्ष्य बन जाता है।

प्रेमचंद जी ने इस सृष्टि में सर्वोच्च स्थान माता को दिया है। मातृत्व ही नारी की संपूर्णता है। 'शूद्रा' कहानी में गंगा अपने वैधव्य की पीड़ा भूलकर अत्यंत कठिनतापूर्वक अपना निर्वाह करती है। वह बेटी के साथ भाड़–फूँककर अपनी आजीविका चलाती है। वह बेटी के पालन–पोषण में अत्यंत सावधानी बरतती है और किसी योग्य व गुणवान युवक से उसकी शादी करना चाहती है। माता संतान के लिए सर्वस्व बलिदान करती आई है जब कि संतान अधिकतर माँ के साथ धूर्तता ही करती आई है। यह माता के लिए बहुत बड़ा अभिशाप है। यह अभिशाप माता के लिए सदैव बना रहेगा। संतान छलपूर्वक उससे गहने माँगती है तो वह कहती है, "क्या तुम समझते हो, मुझे गहने तुमसे ज्यादा प्यारे है? मैं तो अपने प्राण भी तुम पर न्यौछावर कर दूँ, गहनों की तो बिसात ही क्या है?"[7] 'बेटों वाली विधवा' कहानी में अपने चार आज्ञाकारी बेटों व चार आज्ञाकारी पुत्रवधुओं के देखकर वैधव्य की पीड़ा को सहने की शक्ति इक्कठा कर पाती है। पति की तेरहवीं के दिन उसे स्पष्ट हो जाता है कि अब उसका स्वामित्व नहीं रहा। उसके ही घर में उसकी उपेक्षा होने लगती है। वह अंदर ही अंदर कुढ़ती रहती है। एक दिन उसके शाक में मरी चुहिया निकली। इस घटना से तो वह पूरी तरह टूट गई। अविवाहित बहन कुमुद के विवाह में अधिक खर्च न करना पड़े इसके लिए चारों भाई उसका विवाह एक वृद्ध से करना चाहते थे। दयानाथ नामक पुत्र तो एक गलत लेख के कारण जेल भेजे जाने की मनगढ़त कहानी बनाकर माँ की भावनाओं से खेलता हैं। वह अपने को बचाने के लिए सीधा न

कहकर ममता का बहाना बनाता है। अपमान और वात्सल्य में अंततः जीत वात्सल्य की ही होती है। फूलमती कहती है, "मेरे जीते जी तुम्हें कौन गिरफ्तार कर सकता है, उसका मुँह न झुलस दूँगी। गहने इसी दिन के लिए है या किसी और दिन के लिए। जब तुम्हीं न रहोगे तो गहने लेकर क्या आग में झोकूँगी।"[8] इस प्रकार संतान वात्सल्य का नाजायज लाभ उठाकर ममतामयी माता को कष्ट देकर भी ठग लेता है और हर प्रकार से पुत्रों द्वारा अपमानित माँ पुत्रों पर सर्वस्व न्यौछावर करने को तत्पर रहती है।

प्रेमचंद जी ने यह सिद्ध किया है कि व्यक्ति के लिए माँ से अधिक पूजनीय और कोई हो ही नहीं सकता। 'अलग्योझा' कहानी की पन्ना पति की मृत्यु के पश्चात् सौतेले पुत्र रघ्घू के प्रति दायित्व का निर्वाह कर उसे अपना लेती है। उसकी पत्नी मुलिया से भी वह निभाने का हरसंभव प्रयास करती है। वह रघ्घू की मृत्यु के पश्चात् मुलिया का विवाह अपने पुत्र केदार के साथ कर देती है क्योंकि रघ्घू चाहता था कि परिवार संयुक्त ही रहे। 'खून सफेद' की देवकी अपने साधो नामक पुत्र के अपहत हो जाने पर अत्यंत दुःखी होती है। चौदह वर्ष पश्चात् साधो ईसाई बनकर लौटता है तो उसकी खुशी का ठिकाना नहीं रहता। गांव का मुखिया उसे घर में रखने की अनुमति तो दे देता है परन्तु साधों से खान–पान संबंधी छूआछूत रखने की कड़ी चेतावनी देता है। देवकी अपने पुत्र साधों की जिद्द पर मुखिया की चेतावनी ताक पर रखकर अपने साथ उसे थाली में खिलाने को तैयार हो जाती है, चाहे इसके लिए उसे समाज से बहिष्कृत ही क्यों न कर दिया जाए। 'आगा–पीछा' में भगतराम की माता अपने पुत्र की प्रसन्नता के लिए वेश्यापुत्री श्रद्धा को भी पुत्रवधू के रूप में स्वीकार करने को तैयार हो जाती है। वह पुत्र के लिए अपमान सहने को भी तैयार है। अपनी संतान के लिए किए उसके बलिदान को मातृत्व की पराकाष्ठा कह सकते हैं। 'मृतक भोज' कहानी की सुशीला पति की मृत्यु के बाद मृतक भोज की व्यवस्था के लिए मकान, गहने सबकुछ बेच देती है। स्वयं किराए के मकान में रहने लगती। आर्थिक तंगी को सहन करते हुए भी वह स्वाभिमान व संतान स्नेह से समझौता नहीं करती। समय पर किराया न दे पाने पर पचास वर्षीय मकान मालिक झाबर मल द्वारा उसकी पुत्री रेवती से विवाह प्रस्ताव को वह कठोरतापूर्वक ठुकराकर मकान खाली कर देती है। एकमात्र पुत्र का ज्वरग्रस्त होना उसके मनोबल को तोड़ देता है। वह ईश्वर से प्रार्थना करती है, "भगवान यही मेरे जीवन की कमाई है। अपना सर्वस्व खोकर भी मैं बालक को छाती से लगाए हुए संतुष्ट थी, लेकिन यह चोट न सही जाएगी। तुम इसे अच्छा कर दो इसके बदले मुझे उठा लो।"[9]

ऐसा ही हुआ। पुत्र स्वस्थ हो गया और उसकी माता ने सदा के लिए आँखे मूँद ली। इस प्रकार संतान से बढ़कर माता के लिए कुछ भी नहीं होता। 'ममता' कहानी के सेठ राम रक्षा की माँ का भी अपने पुत्र के प्रति असीम मोह है। पिता की मृत्यु के बाद सेठ रामरक्षा दस हजार रुपये माता के नाम बैंक में जमा करा उससे अलग रहने लगता है। अपने पुत्र के इस आचरण पर खिन्न होकर माता अयोध्या चली जाती है। लेकिन जब उसका पुत्र दिवालिया हो जाता है तो वह बिना बुलाए ही दौड़ी चली आती है। उसका कर्ज अदा करके वह उसे जेल से छुड़ा लेती है। इस उपकार के बाद भी उसे सम्मान नही मिलता तो वह पुनः अयोध्या चली जाती है। सही कहा है कि पूत कपूत भले ही हो जाए पर माता कभी कुमाता नहीं होती।

ऐसी माता ने कभी जन्म ही नहीं लिया जो ममता से हीन हो। माँ के लिए उसकी संतान ही सबसे बड़ी संपत्ति है। 'दो भाई' कहानी की कलावती ने अपने दो बेटों का बड़ा ही लाड़–प्यार से पालन–पोषण किया। वे ही बड़े होकर खिन्न रहते। विवाह के बाद माधव धन संपत्ति और केदार संतान की लालसा से उदास रहता। बहुओं की आपस में अनबन रहती थी। दोनों भाई अलग–अलग रहने लगे। अंदर ही अंदर एक दूसरे से ईर्ष्या रखते हुए भी उपर से कुल–मर्यादा के कारण वे भाई के रिश्ते को मात्र निभाते रहे। तीसरी पुत्री के विवाह के समय निर्धन माधव का मकान गिरवी रखकर ही केदार उसे अस्सी रूपये उधार देता है। कलावती को बहुत दुःख होता है। उसके नयनों में लज्जा है और हृदय में शोक संताप। उसने पृथ्वी की ओर कातर भाव से देखकर कहा था कि हे नारायण! क्या ऐसे पुत्रों को मेरी ही कोख से जन्म लेना था। वात्सल्य और ममत्व नारी की दुर्जेय शाक्ति है। 'माता का हृदय' कहानी की माधवी धाय का कार्य करती है। दूसरे के बच्चे के रुग्ण होने पर भी वह चित्कार उठती है। "माता सोती, पिता सोता, किंतु माधवी की आँखों में नींद नहीं थी। खाना–पीना तक भूल गई। देवताओं की मनौतियों करती थी, बच्चे की बलाएँ लेती थी, बिल्कुल पागल हो गई थी।"[10]

नारी के प्रति प्रेमचंद जी का दृष्टिकोण उनकी स्वयं की भोगी हुई जिंदगी से उन्हें मिला फिर भी नारी का चित्रण करने के लिए वे किसी पूर्वाग्रह से ग्रस्त न होकर उसका यथाासंभव यथार्थ चित्रण ही किया। माता तो ममतामयी होती ही है परंतु विमाता को भी उन्होंने ममत्वयुक्त दिखाने का प्रयास किया है। उनके साहित्य में तत्कालीन युग की विमाता का उचित चित्रण हुआ है। वे विमाता को अपनी सौत की संतान से प्रेम न कर पाने वाली नारी के रूप में दर्शाते हैं। माता का एक अन्य रूप वह है जिसमें एक विधुर संतान होते हुए भी अपनी काम–वासना की तृप्ति के दूसरी पत्नी लाता है। अक्सर इस प्रकार की पत्नी का पति उससे अधिक आयु का होता है जो अपनी पत्नी की काम–वासना पूरी तरह शांत कर पाने में असमर्थ रहता है। अपने से अधिक आयु के पति के साथ निभाने के साथ–साथ उसे बिन माँ के बच्चों के साथ माँ बने बिना ही माता का उत्तरदायित्व निभाना पड़ता है। वह स्वयं कुंठाग्रस्त हो जाती है। मानव में सब अच्छा या सब बुरा नहीं होता। वह अच्छे और बुरे का योग ही होता है। परंतु समाज मनुष्य में मात्र अच्छाई की ही अपेक्षा करता है। विमाता भी अच्छी और बुरी दोनों प्रकार की होती है। प्रेमचंद जी के साहित्य में इन दोनों की रूपों का यथार्थ वर्णन हुआ है। मातृहीन बालक को प्रेमचंद जी संसार का सबसे दयनीय प्राणी मानते हैं। मातृत्व से हीन बालक का शारीरिक व मानसिक विकास तो अवरुद्ध होता ही है, वह कुंठित भी हो जाता है। माता की मृत्यु के पश्चात् पिता भी संतान की ओर से विरक्त हो जाता है। ऐसा होने से बालमन और भी खिन्न हो जाता है। प्रेमचंद जी इस पीड़ा के स्वयं भुक्तभोगी थे। 'घर जमाई' में उनकी टिप्पणी सटीक है, "बच्चों के लिए बाप एक फालतू–सी चीज– एक विलास की वस्तु है; जैसे घोड़े के लिए चने या बाबुओं के लिए मोहनभोग। मोहन–भोग उम्रभर न मिले तो किसका नुकसान है, मगर एक दिन रोटी–दल के दर्शन न हों, तो फिर देखिए क्या हाल होता है।"[11] माँ जैसी स्नेह मिश्रित भावना किसी अन्य में न होने से शिशु रूपी पौधा अपेक्षित वृद्धि न करके मुरझाने लगता है। उसे दूसरे के दया भाव व उपेक्षा का पात्र बनकर जीवन जीना पड़ता है। 'गृहदाह' कहानी में प्रेमचंद जी अपने व्यक्तिगत जीवनानुभव से कहते हैं, "मातृहीन बालक संसार का सबसे करूणाजनक प्राणी है। दीन–से–हीन प्राणियों को भी ईश्वर का आधार होता है, जो उसके हृदय को संभालता है। मातृहीन बालक इस आधार से वंचित होता है। माता ही उसके जीवन का एकमात्र आधार होती है। माता बिना वह पंखहीन पक्षी है।"[12]

प्रेमचंद जी ने विमाता शब्द में आए माता शब्द की लाज भी रखी है। उन्होंने विमाता को पूर्णतः हृदयविहीन व मातृत्वहीन नहीं दर्शाया

है। यह उनका नारी के प्रति सम्मान है। अपनी संतान के प्रति ममत्व होना निस्संदेह आदरणीय है किन्तु किसी दूसरे की संतान के प्रति वैसा ही ममत्व श्रद्धा के योग्य है। 'घर नमाई' कहानी में हरिधन की विमाता उससे अत्यधिक ममत्व रखती है। युवा हरिधन अपनी विमाता के घर में आगमन को सहज भाव से नही ले पाता और पत्नी के साथ ससुराल जाकर घर जमाई बनकर रहने लगता है। बाद में जब वह ससुराल से अपमानित होकर वापस घर लौटता है तो उसकी विमाता प्रसन्न होकर कहती है, "बेटा तुम घर आ गए, हमारे धन भाग। अब इन बच्चों को पालो। माँ का नाता न सही, पिता का नाता तो है ही। मुझे एक रोटी दे देना, खाकर एक कौने में पड़ी रहूँगी। तुम्हारी अम्मा से मेरा बहन का नाता है। उस नाते तुम मेरे लड़के होते हो।"[13] हरिधन विमाता के प्रति पूर्वाग्रह से ग्रस्त रहता है परंतु अंत में उसका हृदय–परिवर्तन होता है। 'विमाता' कहानी में नवविवाहिता अंबा का हृदय भी मातृत्व की भावना–युक्त है। वह सौतले पुत्र मुन्नू को प्यार देकर उसकी माता के अभाव की पीड़ा को दूर करना चाहती है। उसका अत्यधिक ममत्व मुन्नू के बालमन को किसी अनिष्ट की आशंका से भर देता है। वह सदैव अपनी विमाता पर संदेह करता है। उसके ममत्व को शंका की दृष्टि से देखता है। वह सामाजिक पूर्वाग्रह से ग्रस्त बालक है। वह अपनी विमाता के न रहने की परिकल्पना से फूट–फूट कर रोता है। विमाता यदि न रही तो उसका क्या होग? उसके रोने की आवाज दूसरों को विमाता के प्रति सशंकित करती है। अम्बा दुःखी होकर कहती है, "यह असंभव है कि मैं मुन्नू के हृदय से माँ का शोक मिटा दूँ। मैं चाहे अपना सर्वस्व अर्पण कर दूँ, परंतु मेरे नाम पर जो सौतेलेपन की कालिमा लगी हुई है वह मिट नहीं सकती।"[14] आखिर मुन्नू की वास्तविक मानसिकता का पता चलने पर उसका दुःख दूर होता है। हृदय परिवर्तन द्वारा चरित्र के क्रिया–कलापों को अभीक्षिप्त दिशा में मोड़कर आदर्श–प्रतिष्ठा स्थापित करना प्रेमचंद जी की प्रिय शैली थी। इस शैली के कारण उनके पात्र कभी–कभी सामान्य न रहकर अलौकिक से प्रतीत होने लगते है किन्तु प्रेमचंद आदर्श की प्रतिष्ठा के लिए इसे जानबूझकर उपेक्षित करते रहे हैं।

भारतीय समाज में विमाता की छवि बहुत ही बुरी है। हर विमाता बुरी नहीं होती। कहावत भी है कि एक मछली पूरे तालाब को गंदा कर देती है। 'गृहदाह' कहानी की देवप्रिया ऐसी ही विमाता है। इस विमाता के कारण सारा समाज विमाता को संदेह की दृष्टि से देखता है। देवीप्रिया एक कुटिल व निष्ठुर स्त्री है। सौतेले पुत्र सत्यप्रकाश को वह इतना प्रताडित करती है कि अंततः सत्यप्रकाश को घर छोड़ना पड़ता है। सर्वगुण संपन्न सत्यप्रकाश विमाता की प्रताड़ना से अत्यंत दुर्बल व आवारा लड़का बन जाता है। पढ़ने में होशियार वह अब पढ़ाई से जी चुराने लगता है। वह सदैव साफ–सुथरा रहता था मगर अब मैला–कुचैला रहने लगता है। विमाता ने उसके जीवन को नरक बना दिया। उसकी शिकायतें हर दिन आती रहती थी। इससे परेशान पिता भी उसे मारने–पीटने लगे। प्रेमचंद जी ने सत्य प्रकाश की परिणति भी आत्महत्या में दिखाई है।

प्रेमचंद जी ने माता की महानता को तो दर्शाया ही है लेकिन कुछ विमाताओं को छोड़कर अधिकतर विमाताओं को भी मातृत्व से युक्त दर्शाया है। यह उनका शोषित, पीड़ित, अपेक्षित नारी जाति के प्रति हृदय से सम्मान है। विमाताओं के प्रति सामाजिक पूर्वाग्रहों पर पुनविचार करने का प्रयास प्रेमचंद जी ने अपने साहित्य में किया है। विमाताओं के प्रति समाज में बनी छवि को तोड़ने का प्रयास किया है। प्रेमचंद जी यथार्थ को व्यक्त करते हुए भी एक सुंदर समाज की कल्पना का स्वप्न नहीं भूलते।

संदर्भ

1. प्रेमचंदः गोदान, पृष्ठ–167
2. प्रेमचंदः निर्मला, पृष्ठ–36
3. प्रेमचंदः कर्मभूमि, पृष्ठ–222
4. प्रेमचंदः मानसरोवर भाग–1, पृष्ठ–42–43
5. प्रेमचंदः गोदान, पृष्ठ–134
6. प्रेमचंदः मानसरोवर भाग–4, पृष्ठ–175
7. प्रेमचंदः मानसरोवर भाग–1, पृष्ठ–63
8. प्रेमचंदः मानसरोवर भाग–1, पृष्ठ–63
9. प्रेमचंदः मानसरोवर भाग–4, पृष्ठ–171
10. प्रेमचंदः मानसरोवर भाग–3, पृष्ठ–90
11. प्रेमचंदः मानसरोवर भाग–1, पृष्ठ–117
12. प्रेमचंदः मानसरोवर भाग–6, पृष्ठ–146
13. प्रेमचंदः मानसरोवर भाग–1, पृष्ठ–125
14. प्रेमचंदः मानसरोवर भाग–8, पृष्ठ–122